विष उगलते मानव

प्रिया देवांगन

सूखे पत्तों से ये रिश्ते, देखो कैसे फिसल रहे हैं।
लोभ दिखा थोड़े पैसों का, अमरबेल सा छिछल रहे हैं।।

बूँद पड़े गर बंजर धरती, तिनका-तिनका उग जाती है।
विचरण करते जीव -जंतु की, थोड़ा तो भूख मिटाती है।।
अहंकार में कलयुग मानव, गिरगिट जैसे बदल रहे हैं।।

करे दिखावा अपनेपन का, भीतर से कड़वी बानी है।
कौन जानते कब डस जाये, घर-घर की यही कहानी है।।
लगे जरा कमजोर यहां तो, अजगर जैसे निगल रहे हैं।।

जिसके जीवन दुख ना आये, अंतस की पीड़ा क्या जाने।
रखे सोच दानव जैसे जो, कैसे नयन नीर पहचाने।।
चार दिनों की खुशियां पा कर, मेंढक जैसे उछल रहे हैं।।

लक्ष्य प्राप्त कर आगे बढ़ते, उनकी ही निंदा करते हैं।
आग धधकती है सीने में, जल-जल कर वे तो मरते हैं।।
करे रात दिन कानाफूसी, विष को कैसे उगल रहे हैं।।

ईश्वर की नगरी में आ कर, क्यों मान नहीं रख पाते हैं।
भक्ति-भाव को त्याग सभी जन, क्यों मिथ्या ही अपनाते हैं।।
कितना भी सर पटको अपना, फिर भी कैसे इठल रहे हैं।।
सूखे पत्तों से ये रिश्ते, देखो कैसे फिसल रहे हैं।।

Scanned with OKEN Scanner